सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और हिंदी साहित्य

श्री राम सजीवन भास्कर
असिस्टेंट प्रोफेसर हिन्दी
राजकीय महिला महाविद्यालय झांसी(उ. प्र.)

हमारा देश विविध धर्म तथा संस्कृतियों का देश है। यहां भाषाई विविधता के बीच अलग-अलग संस्कृतियों का सम्मिलन पाया जाता है। इन्हीं संस्कृतियों को अपने में समाहित करते हुए हिंदी साहित्य के विद्वानों ने अपनी सांस्कृतिक परंपरा को संरक्षित करके विपुल रूप में साहित्य रचना की है। भारत देश विविधता से युक्त होने के बावजूद सांस्कृतिक मूल्यों और सभ्यता की दृष्टि से अपना ऐतिहासिक महत्व रखता है। भारतीय साहित्य वसुधैव कुटुंबकम में विश्वास रखती है। इसी कारण इस संस्कृति ने विश्व की अलग-अलग संस्कृतियों को भी अपने में समाहित कर रखा है। भारतीय संस्कृति ने भारत में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के द्वारा सामाजिक समानता की भावना को जगा कर, देश के हर नागरिक को एक धागे में पिरोया है। जिससे भारत देश आज भी अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपनी एक विशेष छवि के साथ आगे बढ़ रहा है तथा सम्मान प्राप्त कर रहा है। यह देश अपनी गंगा जमुनी संस्कृति के कारण अंतरराष्ट्रीय स्तर पर आकर्षण का केंद्र बना है।इससे प्रभावित होकर विश्व के अनेक देशों के विद्वान यहां आकर इस संस्कृति का अध्ययन कर अपने-अपने देश में जाकर इसका गुणगान किये ।भारतीय संस्कृति की एक समृद्धि परंपरा रह है, जो सदियों से चली आ रही है, इस परंपरा को अक्षुण्ण रखने का दायित्व हिंदी साहित्य ने बखूबी निभाया है। इसने अपनी संस्कृति और राष्ट्रवाद दोनों को समय-समय पर समाज में प्रसारित किया।

मुख्य शब्द- अस्मिता, सभ्यता, संस्कृति, साहित्य, भूमंडलीकरण, और भारतीय समाज।

सभ्यता समाज की बाह्य व्यवस्था है तो संस्कृति उसकी आंतरिक व्यवस्था है, जिससे समाज का नैतिक विकास होता है। संस्कृति मनुष्य के भूत, भविष्य और वर्तमान का सर्वांगीण निरूपण करती है। भारतीय जीवन पद्धति में संस्कृति का अभूतपूर्व योगदान है।यह भारतीय समाज का अभिन्न अंग है।किसी भी संस्कृत के उत्थान में वहां की भाषा का प्रमुख योगदान होता है। यही कारण है कि हिंदी साहित्य में भारतीय संस्कृति की गहरी झलक दिखाई पड़ती है। प्रत्येक संस्कृति का सारतत्व उसकी भाषा में पा सकते हैं। भाषा के बिना यदि संस्कृति समर्थहीन है, तो संस्कृति के अभाव में भाषा अंधी। संस्कृति के पूरक तत्व भाषा के साथ-साथ देश के रहन-सहन, आचार्य-व्यवहार, रीति-रिवाज, ज्ञान-विज्ञान, परंपरागत अनुभव, कला प्रेम जीवन यापन का ढंग और आदत का ज्ञान होता है। भारतीय संस्कृति की सबसे अधिक महत्ता इसमें है, कि इसकी विचारधारा में भौतिक और आध्यात्मिक दोनों का चिंतन समाहित है। भारतीय संस्कृति संसार की एक प्राचीन संस्कृति है। जिसका प्रकाश अनेक संघर्षों से गुजरने तथा हजारों वर्षों की यात्रा के उपरांत भी धूमिल नहीं हुई। आज भी हमारी संस्कृति जैसी थी वैसी ही बनी हुई है। उर्दू के मशहूर शायर मोहम्मद इकबाल की पंक्तियां आज भी अक्षरशः सत्य प्रतीत होती है:-

"कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी ।
सदियों रहा है दुश्मन दौरे जमा हमारा।।"

भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता उसकी उदारता, सहिष्णुता और समस्त वसुधा को एक कुटुंब मानने में है। भारतीय संस्कृति पर्वत की ऊंची चोटी की भांति उच्च, गंगा की तरह सदैव प्रवहमान ,समुद्र की भांति विशाल है। ऋग्वेद का ध्येय वाक्य "आ नो भद्रा, कृत्वो तंतु विश्वस्त:"अर्थात चारों दिशाओं से शुभ और सुंदर विचार हमें प्राप्त हो। यही इसकी समृद्धि एवं विशालता का प्रमाण है। हिंदी भाषा और साहित्य का पूरा इतिहास हमारी समन्वित संस्कृति का इतिहास है।भारत देश में सांस्कृतिक एकता के समय-समय पर जो कोशिश होती रही, उसमें हिंदी भाषा का विशेष योगदान रहा है। संस्कृति को वहन करने वाली हिंदी भाषा ने ही राष्ट्रवाद को भारतीय संस्कृति की एक महत्वपूर्ण विशेषता बनाकर अभिव्यक्ति दी ।'राष्ट्रवाद' शब्द राष्ट्रीयता को अपने में समाहित किए हुए हैं। देश प्रेम की प्रबल भावना 'राष्ट्रीयता' के रूप में लोगों में विद्यमान रहती है, जिससे वह अपने प्राणों की बलि समय-समय पर देते रहे। राष्ट्रीयता को परिभाषित करते हुए अमरकांत लिखते हैं:- राष्ट्रीयता उस भावना विशेष का नाम है, जिसके कारण कोई व्यक्ति या समुदाय पारस्परिक भावना का अनुभव करता है। वह श्रद्धा और निष्ठा पर आधारित एक ऐसा आदर्श है, जिसका केंद्र राष्ट्रवाद होता है। वह एक ऐसी मनोदशा है जिससे व्यक्ति अपनी राष्ट्रीयता एवं राज्य के प्रति उच्चतर भक्ति भावना का अनुभव करता है।

संस्कृति और राष्ट्रवाद के मिलन का कार्य साहित्य द्वारा ही संभव हो पाया है।" हिंदी भाषा और साहित्य का समग्र इतिहास हमारी समन्वित संस्कृत का इतिहास है।"

हिंदी साहित्य में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के विचार को सर्वप्रथम सिद्धों, नाथों, जैनों,संतों और सुफियों ने दिया। समय के साथ विचारों में भी परिवर्तन हो जाना स्वाभाविक है, इस प्रकार विभिन्न कालों में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का स्वरूप कालानुसार भिन्न-भिन्न रहा परंतु मूल भाषा वही रही। भारतीय साहित्य में राष्ट्रीयता के दो रूप मिलते हैं। पहला विदेशी मुस्लिम आक्रमणकारियों और उनके वंशजों के अत्याचार के विरुद्ध विद्रोह और दूसरा ब्रिटिश शासन की प्रतिक्रिया के रूप में। हिंदी साहित्य के आदिकाल में रीतिकाल तक राष्ट्रवाद का प्रथम रूप उपलब्ध होता है, जबकि आधुनिक काल में राष्ट्रवाद का दूसरा रूप पाया जाता है।

आदिकाल के अंतर्गत सांस्कृतिक राष्ट्रवाद बहुत संकीर्ण और संकुचित रही। उस समय का राष्ट्रवाद सामंतवादी था, जो एक दूसरे से अपनी सीमा का विस्तार तथा अपने राजपूती गौरव के लिए युद्ध करते रहते थे। उस समय संपूर्ण देश के गौरव की चिंता ना कर केवल और केवल एक निश्चित सीमा की ही चिंता थी। उनकी दृष्टि इतनी अधिक संकुचित थी कि पृथ्वीराज और गौरी के संघर्ष को भी जातीय या राष्ट्रीय संघर्ष के रूप में देख पाते हैं।आदिकलीन कवि हेमचंद के काव्य में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की एक झलक इन पंक्तियों में दिखाई देती है:-

"भल्ला हुआ जु मारिया बहिणि म्हारा कंतु।
लज्जेज तु वयंस्सि अहु जे भग्गा घर एंतू।

हिंदी साहित्य की द्वितीय काल पूर्व मध्यकाल जिसे भक्ति काल के नाम से भी जाना जाता है, में भी हमें सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के दर्शन होते हैं। संत साहित्य के प्रमुख कवि, समाज सुधारक के रूप में अपनी विचारधारा को साहित्य में अभिव्यक्ति देते हैं।जिसमें सामाजिक एकता

की भावना के साथ राष्ट्रीयता के भी दर्शन होते हैं:-

"कबीरा खड़ा बाजार में मांगे सबकी खैर,
ना काहू से दोस्ती ना काहू से बैर।"

भक्ति काल में ही कबीर के प्रवर्ती प्रसिद्ध कवि तुलसीदास जी के काव्य में भारतीय संस्कृति के दर्शन होता है जो संपूर्ण राष्ट्र के लिए है। जिसमें उनके समन्वयवादी भावना में व्यक्त होती है:-

"सब नर करहि परस्पर प्रीती।
चलहि स्वधर्म निरत श्रुति नीती।
बयरु न करु काहु सन कोई।
राम प्रताप विषमता कोई।।"

उत्तर मध्यकाल में रीतिकालीन कवियों के द्वारा भी सांस्कृतिक राष्ट्रवाद जातीय गौरव से ओतप्रोत है। उस युग के समस्त हिंदू गौरव का प्रतिनिधित्व नायक के रूप में महाराणा प्रताप, वीर शिवाजी और छत्रसाल जैसे वीरों ने किया। शिवाजी और छत्रसाल जैसे वीरों की कहानी भूषण ने अपनी लेखनी के द्वारा समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया। वह हिंदू जात की सांस्कृतिक राष्ट्रीयता की एक झलक प्रस्तुत करती है:-

"वेद राखे विदित पुरान परसिद्ध राखे,
राम नाम राख्यो अति रसना सुघर में,
हिंदू की चोटी, रोटी राखिन है सिपाहिन की,
कांधे में जानेउ राख्यो माला राखी गर में।"

आधुनिक काल में हिंदी साहित्य के अंतर्गत जो सांस्कृतिक राष्ट्रीयता की अभिव्यक्त हुई वह भारतेंदु हरिश्चंद्र जी के द्वारा प्रारंभ हुई है। भारतेंदु जी अपने देशवासियों के अज्ञानता संकीर्णता आदि की घोर भर्त्सना करते हुए, भारतीयों की शक्ति को पुनः जागृत करने का प्रयास करते हुए कहते हैं:-

"जब तक सौ दो सौ आदमी बदनाम न होंगे, जात से बाहर न निकालें जाएंगे, दरिद्र नहीं होंगे, कैद नहीं होंगे, वरंच जान से मारने न जाएंगे, तब तक कोई देश नहीं सुधरेगा।"

भारतेंदु युग में भारतेंदु के साथ-साथ उनके युगीन कवियों ने भी भारतीय जनमानस में देश प्रेम और राष्ट्रवाद की अलख जगाई ।आदिकालीन व रीतिकालीन कवियों से ऊपर उठकर क्षेत्र की संकीर्णता को छोड़कर संपूर्ण राष्ट्र की बात करने लगे। भारतेंदु की 'विजयनी विजय वैजयंती' बद्रीनारायण चौधरी प्रेम घन की 'आनंद अरुणोदय 'प्रताप नारायण मिश्र की 'महापर्व' और राधा कृष्ण दास की 'भारत बारह मासा' आदि कविताएं देश प्रेम तथा देशभक्त की प्रेरणा से युक्त हैं। भारतेंदु जी की एक कविता का उदाहरण जिसमें उन्होंने अंग्रेजों द्वारा किए जा रहे शोषण को रेखांकित किया है:-

"अंग्रेज राज सुख साज सबै सब भारी।
पै धन विदेश चलि जात यहै अति ख्वारी।"

द्विवेदी युगीन कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से जन जागरण किया। उस समय गांधीवादी प्रभाव हिंदी साहित्य पर भी पड़ा। साहित्यकारों ने जन समुदाय के बीच में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को जगा कर स्वतंत्रता के प्रति चेतना का संचार किया। इस युग के अनेक कवियों ने राष्ट्रीयता की भावना का चित्रण किया। जिनमें प्रमुख रूप से मैथिली शरण गुप्त,माखनलाल चतुर्वेदी बालकृष्ण शर्मा नवीन, सुभद्रा कुमारी चौहान, और सोहनलाल द्विवेदी आदि। मैथिली शरण गुप्त जी की भारत भारती रचना में राष्ट्रीयता की मार्मिक भावना दृष्टिगोचर होती है यथा:-

"हम क्या थे क्या हो गए और क्या होंगे अभी।
आओ मिलकर बिचारे यह समस्याएं सभी।।"

डॉक्टर गणपति चंद्र गुप्त इन पंक्तियों के विषय में लिखते हैं। यह पंक्तियां ही पाठक के हृदय में राष्ट्रीयता का संचार कर देती हैं। गुप्त जी ने अपने काव्य ग्रन्थों में प्राय सभी धर्म समुदायों को सहानभूतिपूर्वक स्थान दिया। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा से अनेक हिंदी कवि सामने आए। उनकी कविताओं में राष्ट्रीयता, समाज सुधार, नवजागरण, स्वातंत्र्य चेतना, मानवतावाद, सामाजिक समानता एवं गांधीवाद का बोलबाला था। द्विवेदी युगीन कवियों ने अपनी रचनाओं से समाज में राष्ट्र के लिए समर्पण एवं बलिदान की प्रेरणा का संचार किया। भारत भारती में गुप्त जी ने राष्ट्रीयता एवं स्वातंत्र्य चेतना से युक्त ऐसी रचना प्रस्तुत की। जिसे अंग्रेजी सरकार द्वारा प्रतिबंधित कर दिया गया। उन्होंने देशवासियों की पराधीनता की बेड़ियों से मुक्ति पाने का संदेश देते हुए कहा:-

" शासन किसी पर जाति का चाहे विवेक विशिष्ट हो।
संभव नहीं है किंतु जो, सर्वंश में वह इष्ट हो।।"

इसी तरह गया प्रकाश शुक्ल स्नेही ने भी राष्ट्रवाद की झलक प्रस्तुत करते हुए व्यक्ति के स्वाभिमान को जगाने के लिए अपनी लेखनी चलाई।

"जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
वह न नहीं, नरपशु निरा है,और मृतक समान है।।

छायावादी कवि व्यक्ति की स्वाधीनता के साथ-साथ हर प्रकार की दासता के विरुद्ध आवाज उठाते रहे हैं। यह दासता आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक किसी भी प्रकार की हो सकती है। छायावादी काव्य में दो विचारधाराए दिखाई पड़ती हैं। एक विचारधारा वह हैजिसमें लेखकअपनी प्राचीन विरासत एवं सांस्कृतिक गौरव का गान किया है। इनमें प्रमुख रूप से जयशंकर प्रसाद, निराला, सुमित्रानंदन नंदन पन्त,महादेव वर्मा आदि कवियों की रचनाएं पाई जाती है। दूसरी विचारधारा राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य का है। इसके प्रमुख रचनाकार स्वयं रचना तो करते ही थे साथ ही साथ स्वतंत्रता के आंदोलन में सक्रिय रूप से सहभागी भी रहें हैं। उनमें प्रमुख हैं माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन सुभद्रा कुमारी चौहान, रामनरेश त्रिपाठी आदि।

जयशंकर प्रसाद ने चंद्रगुप्त नाटक में इस गीत के माध्यम से भारत की महिमा का विशेष वर्णन किया है:-

"हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती।
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती।।"

राष्ट्रीय काव्य धारा के प्रमुख कवि माखनलाल चतुर्वेदी की रचना पुष्प की अभिलाषा में पुष्प के माध्यम से जो लोगों को संदेश दिया वह अद्वितीय हैं:-

"मुझे तोड़ लेना वनमाली उसे पथ पर देना फेक।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जाएं वीर अनेक।।

आजादी के बाद लोगों में निराशा व्याप्त हुई।नेताओं की कथनी और करनी में अंतर तथा राजनीतिक लाभ के कारण देश की अखंडता और भारतीय समाज की एकता को संप्रदायवाद, उग्रवाद, आतंकवाद, भाषावाद जैसे विचारों को प्रसय मिला। ऐसे समय में हिंदी साहित्य ने अपने कर्तव्य का का पालन करते हुए राष्ट्रीय सांस्कृतिक भाव को बनाए रखा, तथा समाज की विसंगतियों पर, राजनेताओं पर, सरकार पर, पूंजीवादी व्यवस्था पर ,क्षेत्रवाद, भाषावाद, पर गहरी चोट की।इन कवियों में प्रमुख रूप से नागार्जुन, मुक्तिबोध,शिवमंगल सिंह 'सुमन,' रामधारी सिंह 'दिनकर', केदारनाथ अग्रवाल, दुष्यंत कुमार आदि।

देश में जो सामाजिक विषमता खड़ी हुई और बढ़ती जा रही थी। उनसे दुखी होकर नागार्जुन ने अपनी पीड़ा इन शब्दों में व्यक्त किया:-

" खादी ने मलमल से अपनी साठ- गाठ कर डाली है।
बिरला टाटा डालमिया के तीसो दिन दिवाली है।।"

इसी तरह नागार्जुन की एक और रचना है जो कि देश की एकता और अखंडता पर आधारित है:-

"खेत हमारे भूमि हमारी सारा देश हमारा है।
इसीलिए तो हमको इसका चप्पा चप्पा प्यारा है।।

उद्देश्य:-

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की आवश्यकता भारत को ही नहीं प्रत्येक देश को होती है। अपनी संस्कृति, अपना देश, अपने धरोहर, आदि की हिफाजत करने के लिए जो भाव मन में उत्पन्न होता है। वह राष्ट्रवाद राष्ट्रवाद के कारण ही है। प्रत्येक निवासी अपने देश के प्रति राष्ट्रभक्ति की भावना से कार्य करता है। इस राष्ट्रभक्ति को आगे बढ़ाने के लिए हिंदी साहित्य ने बखूबी कार्य किया है।

निष्कर्ष:-

भारतीय संस्कृति का मूल तत्व है। आध्यात्मिकता, समन्वयशीलता, विश्व बंधुत्व, कर्मण्यता,साहस, नैतिकता, संयम, त्याग और बलिदान, देशभक्ति एवं राष्ट्रीयता ये तत्व ही भारत को विश्व में विशिष्ट बनाते हैं। इन तत्वों की रक्षा के लिए सदैव से ही हिंदी साहित्य अग्रणी भूमिका निभाता रहा है। हिंदी के साहित्यकार अपनी रचनाओं के माध्यम से पथभ्रष्ट, संस्कृति च्युत एवं संकीर्ण राष्ट्रीयता के विरुद्ध अपनी लेखनी चलाकर इनमें सुधार करने का प्रयास करते रहें हैं।अपनी रचनाओं के माध्यम से साहित्यकार लोगों के हृदय में जोश और ऊर्जा का संचार कर देश की एकता, अखंडता के लिए मर मिटने के लिए तैयार करते रहें हैं। राष्ट्रवाद भारतीय संस्कृत में रचा बसा है । इसी के बल पर देश को आजादी प्राप्त हुई तथा आज अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारतीय राष्ट्रवाद अपनी सांस्कृतिक महत्ता के कारण प्रतिष्ठित होकर सम्मान पा रहा है।

****

संदर्भ:-

1- जयशंकर प्रसाद -चन्द्र गुप्त नाटक
2- डॉ0 नगेंद्र -हिंदी साहित्य का इतिहास
3- डॉ0 गणपति चंद्र गुप्त - साहित्यिक निबंध
4- डॉ बच्चन सिंह -हिन्दी साहित्य का इतिहास
5- डॉ अशोक तिवारी - प्रतियोगिता साहित्य
6- मैथिली शरण गुप्त - भारत भारती
7- आज कल पत्रिका - जून 2015

'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा में दलित महिला का यथार्थ

अमिता टेटे
डॉ. महेन्द्र कुमार वर्मा

भारतीय साहित्य में आत्मकथा एक महत्वपूर्ण विधा रही है, लेकिन दलित आत्मकथा ने इस विधा को एक नई दृष्टि, अनुभव और संवेदना से समृद्ध किया है। दलित आत्मकथा केवल किसी व्यक्ति के जीवन का बयान नहीं होती, बल्कि यह पूरे दलित समुदाय के शोषण, संघर्ष, उत्पीड़न और आत्म-साक्षात्कार की कहानी होती है। यह साहित्यिक विधा भारतीय समाज की जातीय जटिलताओं को सामने लाकर उसे चुनौती देती है। दलित आत्मकथाएँ अपने लेखक के जीवन अनुभवों पर आधारित होती हैं, इस कारण इनमें जीवन की कटु सच्चाइयाँ, सामाजिक यथार्थ और हाशिए पर खड़े समुदाय की पीड़ा गहराई से उभरती है। ये आत्मकथाएँ सवर्ण वर्चस्ववादी सोच और व्यवस्था के विरुद्ध तीव्र प्रतिरोध दर्ज करती हैं। दलित आत्मकथाएँ समाज की परंपरागत व्यवस्था की कठोर आलोचना करती हैं और ब्राह्मणवादी सोच को चुनौती देती हैं। इनमें निजी अनुभवों के माध्यम से व्यापक सामाजिक अनुभवों को प्रस्तुत किया जाता है। इनमें सहज, सजीव, अनगढ़, किंतु प्रभावशाली भाषा का प्रयोग होता है। यह शैली मुख्यधारा की साहित्यिक भाषा से भिन्न होती है, और यथार्थ के अधिक निकट प्रतीत होती है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की **'जूठन'** दलित जीवन की सामाजिक हीनता, स्कूल में भेदभाव और श्रम की गुलामी को मार्मिक रूप में प्रस्तुत करती है। शरण कुमार लिंबाळे की **'अक्करमाशी'** मराठी में लिखी गयी यह आत्मकथा दलित और अछूत के रूप में लेखक के जीवन संघर्ष को दर्शाती है। बाबा साहेब अंबेडकर की **'Waiting for a Visa'** अंग्रेज़ी में लिखी गई छोटी आत्मकथा है जो जातिवाद की अमानवीयता को दर्शाती है। कौसल्या बैसंत्री द्वारा लिखी गयी **'दोहरा अभिशाप'** में एक दलित स्त्री के दोहरे उत्पीड़न– जाति और लिंग का चित्रण है। दलित आत्मकथाओं ने साहित्यिक विमर्श को एक नया मोड़ दिया है। इन्होंने मुख्यधारा साहित्य की ब्राह्मणवादी सत्ता को चुनौती दी और हाशिए के आवाज़ को मुख्य विमर्श में लाने का काम किया। साथ ही, इन्होंने दलित चेतना, आत्मसम्मान और संघर्ष को नई दिशा दी है। इसी परंपरा की अगली कड़ी है सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' जिसमें पारम्परिक सवालों के साथ दलित पुरुष को कठघरे में खड़ा करने में किसी तरह की कोताही नहीं बरती गई है। आत्मकथा में दलित पुरुष के घिनौनेपन का पर्दाफ़ाश किया गया है, जो मंच पर स्त्री के अन्याय एवं भेदभाव के खिलाफ़ आवाज उठाता है, वही पुरुष अपने घर में स्त्री के साथ भेदभाव करता है। आत्मकथा में लेखिका द्वारा शिक्षा प्राप्ति का अनवरत संघर्ष, लगन और जिद्द अनुकरणीय है। लेकिन वह चाहते हुए भी अपने पति के शिकंजे से मुक्त नहीं हो पाती है। यह आत्मकथा पुरुषसत्ता पर सवाल खड़ा करती है।

भारतीय समाज में छुआछूत और जातीय भेदभाव एक लंबे समय से व्याप्त सामाजिक बुराई रही है। यह अमानवीय प्रथा इस धारणा पर आधारित है कि कुछ जातियाँ 'शुद्ध' हैं और कुछ 'अशुद्ध'। इसी सोच ने समाज को ऊँच-नीच के खाँचों में बाँट दिया, जिससे न केवल सामाजिक एकता को ठेस पहुँची, बल्कि मानवता भी शर्मसार हुई। नीची समझी जाने वाली जातियों को लंबे समय तक मंदिरों में प्रवेश करने, सार्वजनिक जलस्रोतों का उपयोग करने, स्कूलों में शिक्षा प्राप्त करने और अन्य बुनियादी अधिकारों से वंचित रखा गया।